
आत्म-केन्द्रित एवं ईश्वर-केन्द्रित धर्म-दर्शन

—डा० मांगीमल कोठारी

(स्वतन्त्र चिन्तक, एसोसियेट प्रोफेसर दर्शन विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय)

धर्म और दर्शन के इतिहास में हमें प्राचीनकाल से ही दो भिन्न धाराएँ मिलती हैं जिन्हें मिलाने के कई प्रयास हुए हैं जो कई लोगों को शान्ति प्रदान अवश्य करते हैं परन्तु उससे जनित मौलिक कठिनाइयों को हल नहीं कर सकते। एक तो वे धर्म और दर्शन हैं जिनके केन्द्र में ईश्वर का प्रत्यय है और दूसरे वे जिनके केन्द्र में आत्मा का प्रत्यय है।

ईश्वर-केन्द्रित धर्म और दर्शन—

पश्चिम एशिया के सभी धर्म—पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम ईश्वर-केन्द्रित हैं। उनके लिए ईश्वर और केवल ईश्वर ही अन्तिम प्रत्यय है। जगत की हर वस्तु उसके द्वारा रचित है। ईश्वर सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिमान है, अर्थात् उसके लिए असम्भव नाम की कोई चीज नहीं। वह जगत का कारण है, उसका कोई कारण नहीं है। जड़ और जीव उसी महान कारण के कार्य हैं। किस प्रकार? यह पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सब केवल उसके संकल्प के फल हैं न कि किसी सनातन समानान्तर सत्ता की नई व्यवस्थाएँ। तर्कबुद्धिजनित सभी दार्शनिक कठिनाइयाँ यहाँ आकर मिट जाती हैं।

पश्चिम एशियाई धर्म अपनी धारणा में स्पष्ट है, एक मत है। चूँकि ईश्वर ने ही सभी जीवों की उत्पत्ति की इसलिए कोई भी जीव किसी भी प्रकार से ईश्वर के समकक्ष नहीं हो सकता। जीव चाहे कितना भी आत्म-विकास करले, ईश्वर एक भी पहुँच जाय, उसका ज्ञान ईश्वर से सर्वदा कम ही रहेगा।

भारत में वैदिक युग में प्राकृतिक शक्तियों की पूजा प्रचलित थी और बहुदेववाद से एकेश्वरवाद (monotheism) विकसित होने लगा था। परन्तु उपनिषदों में तत्त्वमीमांसिक चिन्तन बहुत हुआ जिसके फलस्वरूप सेमेटिक धर्मों की तरह भक्तिमार्ग विकसित नहीं हो सका और ज्ञानमार्ग के द्वारा एकेश्वरवाद की परिणति एकतत्त्ववाद (monism) में होने लगी। हालाँकि कुछ उपनिषदों ने एकेश्वरवाद को प्रचलित करने की कोशिश की, परन्तु उपनिषदों की मुख्य तत्त्व मीमांसा एकतत्त्ववाद की रही, जिसे उन्होंने ब्रह्मा या आत्मा शब्दों से निर्देशित किया। इस प्रकार ईश्वरकेन्द्रित दर्शन होने के बजाय उपनिषद आत्मकेन्द्रित दर्शन बन गये और जीव और आत्मा को ही ब्रह्मा के अर्थ में लेने लगे।

आत्म-केन्द्रित धर्म और दर्शन

भारत के प्राचीनतम धर्मों में जैन धर्म ने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया और हर जीव को अपने कर्म का कर्त्ता और भोक्ता होने के विचार को मान्यता दी। अपने पुरुषार्थ से कर्मों के क्षय द्वारा आत्म-विकास करके मोक्ष प्राप्त करने की क्षमता में पूर्ण विश्वास ने इसे ईश्वर-केन्द्रित न होकर आत्म-केन्द्रित बनाया। कर्म का क्या स्वरूप है, और सभी कर्मों का क्षय किस प्रकार हो, यह जैन दर्शन का मुख्य विषय बन गया। आत्मज्ञान की प्राप्ति कर्मों के क्षय होने से ही हो सकती है। कर्म का क्षय कर्म से नहीं हो सकता। हर कर्म से नया कर्म ही बनता है, चाहे शुभ हो या अशुभ। जब निर्जरा के द्वारा बुरे कर्मों का क्षय होने लगा या लगता है तो बचे हुए शुभ कर्मों की शक्ति जीव को ज्ञान के विकास की ओर अग्रसर करती है। अन्त में ज्ञान द्वारा बचे हुए कर्मों का नाश उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार घास के ढेर का एक चिनगारी द्वारा। इस प्रकार मोक्ष-प्राप्ति के लिए निर्जरा का महत्व बतलाकर जैन दर्शन ने शुरू से ही एक ऐसी भावना को प्रेरणा दी जिसे लोगों ने कर्म-संन्यास नाम से प्रचलित किया।

मोटे तौर पर इसी तरह का समाधान बुद्ध ने भी प्रस्तुत किया। महावीर और बुद्ध के समय में देश में एक ऐसा दार्शनिक वातावरण बन गया जब उपनिषद्, जैन और बौद्ध दर्शनों ने पूर्णतः ज्ञानमार्ग को बढ़ावा दिया। परन्तु वेदों से प्रेरणा वाले कुछ उपनिषदों ने इस धारणा की ईश्वर-केन्द्रित दर्शनों से समन्वय करने की चेष्टा की। पूर्वमीमांसा ने वैदिक धर्म को अपनाया, जबकि उत्तर-मीमांसा ने एक-तत्त्ववादी उपनिषदों को आधार बनाया। वेदों की खुलकर निन्दा न करते हुए भी उपनिषदों में वैदिक मूल्यों का अवमूल्यन किया गया। शंकराचार्य मौटे तौर पर आत्म-केन्द्रित रहे। परन्तु वेदान्त की अन्य सभी शाखाओं के आचार्यों ने ईश्वर-केन्द्रित दर्शनों का प्रतिपादन किया जिसके फलस्वरूप दार्शनिक जगत में एक ऐसा अन्तर्विरोध बढ़ गया जिसका समाधान करने का हर प्रयास विफल रहा। यह विरोध केवल सिद्धान्त की दृष्टि तक ही सीमित नहीं रहा। इसके बहुत महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम निकले।

वेदान्त के आचार्यों ने एकेश्वरवाद और एकतत्त्ववाद का मिश्रण कर दिया। इसने दर्शनशास्त्र को एक अमिट उलझन में डाल दिया। वेदान्त के आचार्य उस उलझन में खो गये। जबकि सेमेटिक धर्म पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित रहे। वेदान्त पर आधारित सभी धर्म और दर्शन न तो पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित रहे, न पूर्णरूप से आत्म-केन्द्रित रहे। उन्होंने कर्म के सिद्धान्त में कर्मफल की अनिवार्यता को मानते हुए भी ईश्वर को कर्मफल पर वीटो (Veto) की शक्ति प्रदान की। प्रारब्ध, विधि, कर्मगति में सब को बाँधकर भी पुरुषार्थ के लिए उचित स्थान बनाये रखा और ईश्वर की सर्वशक्तिमानता में कमी नहीं आने दी।

वेदान्त के अनुयायी व्यावहारिक जीवन में वैदिक कर्मकाण्ड और उस पर आधारित स्मृतियों से प्रेरणा लेते रहे। इस प्रकार भारतीय जीवन में एक तरफ वैदिक कर्मकाण्ड और दूसरी तरफ जैन प्रेरित निर्जरा के प्रभाव से अधिक से अधिक बचने का विचार, जो जैन और वैदिक धर्म दर्शनों में निरन्तर विवाद का विषय बना हुआ था, वह अब वेद-वेदान्त के भीतर भी विवाद का विषय बन गया। गीता ने स्पष्ट रूप से उस समय के विचार-द्वन्द्व को “कर्मयोग बनाम कर्म संन्यास” के द्वन्द्व के रूप में प्रस्तुत किया।

कर्म द्वारा मोक्ष की प्राप्ति या कर्मसंन्यास द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के विषय पर बहुत लम्बे समय तक विवाद चलता रहा। गीता ने अपने दर्शन को ईश्वर-केन्द्रित बनाकर कर्म के साथ ज्ञान और भक्ति का इस तरह मिश्रण किया कि उससे उलझन बढ़ती ही गई। शंकराचार्य ने व्यवहार में सभी तरह के विरोधा-

भासों को पलने दिया, परन्तु सिद्धान्त रूप से वेदान्त को पुनः आत्म-केन्द्रित बनाने की पूरी कोशिश की। लेकिन बाद के कई सन्तों ने गीता को केन्द्र बनाकर भक्ति-मार्ग को इस प्रकार बल दिया कि कर्म और ज्ञान का महत्व गौण होने लगा। हमारा सामाजिक और राजनैतिक जीवन भी ईश्वर के भरोसे चलने लगा। हमारी भावनाएँ, शुभ और अशुभ भक्ति-केन्द्रित रहीं जिसके दुष्परिणाम साम्प्रदायिक तनाव के रूप में लभरने लगे। ईश्वर-केन्द्रित दर्शनों को अपनाने वाले सेमिटिक धर्मों ने ईश्वर के नाम पर खूब लड़ाई-झगड़े किये। यहूदियों ने यहूवा के नाम पर, ईसाइयों ने ईश्वर के नाम पर और मुसलमानों ने अल्लाह के नाम पर “धर्मयुद्ध” किये और खूब खून बहाया। इन सबका यही विश्वास रहा है कि ईश्वर केवल हमारे साथ है, अन्य धर्मों के लोगों के साथ नहीं है। वह उनको नरक में भेज देगा।

भारतीय धर्म और दर्शन जब तक आत्म-केन्द्रित रहे, यहाँ का सामाजिक और राजनैतिक जीवन मतान्धता से विषाक्त नहीं हुआ था। परन्तु इस्लाम के आने के बाद स्थिति बदलनी शुरू हुई। गुलामी के लम्बे युग में ईश्वर-भक्ति ने उन्हें एक अजीब तरह की मस्ती प्रदान की। शंकराचार्य के बाद वेदान्त पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित बन गया। ईश्वर-केन्द्रित बनने पर आत्मज्ञान का अवमूल्यन शुरू हुआ। भक्ति के नाम पर अज्ञान और मतान्धता बढ़ते गये। रामानुज, मध्व और वेदान्त के अन्य आचार्यों ने शंकराचार्य के विरुद्ध ही नहीं बल्कि आपस में भी अशोभनीय भाषा में विवाद शुरू कर दिये। ईश्वर के नाम पर धार्मिक वैमनस्य बढ़ने लगा।

जब अंग्रेज भारत छोड़ने को थे, तब मुसलमानों ने पाकिस्तान के लिये जिहाद-सा छेड़ दिया। उनकी सफलता से इस धारणा को बल मिला कि बड़े पैमाने पर हिंसा के द्वारा राजनैतिक लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। इससे पंजाब के मतान्ध लोगों को प्रेरणा मिली। आज पंजाब में रोज निर्दोष लोगों की हत्याएँ हो रही हैं। वे सब ईश्वर के नाम पर ही हो रही हैं। हम यह नहीं कह सकते कि आतंकवादियों में भक्ति नहीं है। वह आवश्यकता से अधिक है। परन्तु आत्म-केन्द्रित दर्शन के अभाव में वह अज्ञान में लिप्त है।

आज धार्मिक क्षेत्र में जिस तरह का वातावरण बना हुआ है, वह भक्ति मार्ग के अनावश्यक महत्व के कारण हुआ है। भक्ति के साथ ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, वरना उसके परिणाम बहुत खतरनाक हो सकते हैं, व्यक्ति के लिये ही नहीं बल्कि समाज और देश के लिये भी। सिद्धान्त और व्यवहार में केवल जैन दर्शन ही आत्मकेन्द्रित रहा है। जैन समाज में जहाँ कहीं भी बुराई दिखाई दे रही है उसका कारण भक्ति की लहर का कुप्रभाव है। कई क्षेत्रों में जैन लोग वैष्णवों की भक्ति की नकल करने में लगे हैं। परिणामतः जैन समाज में साम्प्रदायिकता की बीमारी कई वर्गों में फैल गई है। पुस्तक पूजा, मूर्ति पूजा, व्यक्ति पूजा केवल साधन हैं। वे अपने आप में साध्य नहीं हैं। वे यदि आत्म-ज्ञान जाग्रत नहीं कर सकते तो अज्ञान से दूषित भक्ति ही पनपायेंगे। जो लोग ज्ञानी हैं और मर्तों से परे हैं, वे ध्यान के महत्व पर अधिक बल देते हैं। ध्यान व्यक्ति को तुच्छ भावनाओं से परे ले जाता है। यह ध्यान मन्दिर में मूर्ति के सामने किया जा सकता है और स्थानक, आश्रम या गुफाओं के एकान्त में भी किया जा सकता है। इस विषय पर जो विवाद हुए हैं, वे आत्मज्ञान की कमी के सूचक हैं। यदि जैन दृष्टिकोण आत्म-केन्द्रित रहता है तो भक्ति के साथ जो अज्ञान घुस गया है, उससे वह मुक्त हो सकता है। जैन-जगत को नेतृत्व देने वालों के लिए यह अति आवश्यक है कि वे अपने आत्म-केन्द्रित दर्शन की शुद्धता को बनाये रखें।

